अनुभव

एक स्कूल मैनेजर की डायरी के कुछ पन्ने–IX

स्कूल का चलना II : जेण्डर कमेटी

फ़राह फ़ारूक़ी

उच्चतम न्यायालय के विशाखा दिशा-निर्देशों के तहत हमारे स्कूल में एक जेण्डर सैन्सेटाइज़ेशन कमेटी बनाई गई है। इस कमेटी के कुछ मेम्बर स्कूल के ''छोटे-मोटे अन्दरूनी'' मामले देखते हैं। इस छोटी कमेटी में शामिल हैं चार महिला और एक पुरुष टीचर। जब यह कमेटी वजूद में आई तो इसकी फ़िक्र और काम देखकर मैं ख़ुद से यह सवाल करने पर मजबूर हो गई कि जब ऐसी किसी कमेटी को नौकरशाही तंत्र के एक महत्त्वपूर्ण औपचारिक हिस्से की शक्ल दे दी जाती है, तब क्या यह एक ख़तरनाक सूरत इख़्तियार कर सकती है। इससे पहले कि इसे एक इदारायी जामा पहनाया जाए, क्या यह जानने की ज़रूरत है कि फ़ैसले लेने वालों की खुद की ज़हनियत, सोच और यक़ीन समाजी समूहों, बच्चों और जेण्डर के बारे में क्या है?

इस किस्त में जेण्डर सैन्सेटाइज़ेशन कमेटी के काम पर रौशनी डाली गई है। यह बताने की कोशिश है कि किस तरह जेण्डर कमेटी के सदस्यों की सोच और समझ उनके काम को प्रभावित करती है। साथ ही यह सवाल उठाने की कोशिश है कि इस तरह का काम जिस तरह के ख़ामोश लेकिन ताक़तवर पैग़ाम बच्चों को और समुदाय को देता है, क्या यह समाज के ठहराव में योगदान देते हैं या बदलाव में? यह भी ज़िक्र है कि स्कूल की बच्चियां किस तरह जेण्डर कमेटी के होने से फ़ायदा उठाती हैं और लड़कों के तानों और आक्रामक व्यवहार का मुक़ाबला करती हैं।

जब कमेटी बनाई गई और सदस्यों के साथ मीटिंग हुई तब कुछ भनक-सी तो हुई थी कि मामला कुछ गड़बड़ हो सकता है। यह शुरुआती मीटिंग भी बस कमेटी बनाने के लिए ही थी और कुल पंद्रह-बीस मिनट की ही हो पाई थी। बैठक में एक महिला सदस्य ने इत्मिनान दिलाया, ''इस मामले में तो हम लोग सभी बहुत मोहतात रहते हैं, सब पर नज़र रखते हैं कि कहीं कोई ऊंच-नीच, गड़बड़ तो नहीं हो रही है।'' दूसरी टीचर बोलीं, ''इस तरफ़ से तो मैम, आप बेफ़िक्र रहें, इस स्कूल में कभी कोई ऐसा मामला बढ़ने नहीं दिया गया।'' उस वक़्त तो कुछ ख़ास समझ में आया नहीं, लेकिन कुछ दिन में ही बातें साफ़ होती चली गईं।

लेखक परिचय

दिल्ली विश्वविद्यालय के लेडी श्रीराम कॉलेज में बीएलएड कोर्स से जुड़ी रही हैं। आजकल जामिया मिलिया इस्लामिया के शिक्षा विभाग में प्रोफेसर हैं और दिल्ली एजुकेशन सोसाइटी से संबद्ध हैं।

''मामले'' और ''केस''

कुछ ''मामले'', जिनकी फ़िक्र हमारी इस कमेटी को थी और इसने अपने हाथ में लिए, और अपने ख़याल में सुलझाए और मेरे ख़याल में उलझाए वे इस तरह थे। एक बच्ची और बच्चे की ख़ास दोस्ती हो गई। दोनों नज़र में आ गए। बाक़ायदा हमारी कमेटी के मिनट में दर्ज है कि लड़की को अकेले लड़के के साथ क्लास में बैठा पाया गया। कमेटी के हिसाब से दोनों को समझाया गया, नहीं माने। लड़का, लड़की के साथ-साथ घर तक जाता था, यह ''चश्मदीदों'' की गवाही से भी पता चला। दोनों बच्चों के घर वालों को बुलाया गया। लड़के के घरवालों से एक हज़ार रुपये फ़ाइन वसूला गया और बात आई गई हो गई। लड़की की मां को ''जुर्म'' जिस तरह बयान किया गया, बेचारी डर गईं। कहा, ''मैं ग़रीब औरत हूं अगर बच्ची की बदनामी हो गई तो क्या करूंगी।'' लड़की को घर बिठा लिया। मुझे जब इस बारे में पता चला तो काफ़ी दिन गुज़र चुके थे। मैंने अफ़सोस का इज़हार करते हुए जब ऐतराज़ किया तो हमारे प्रिंसिपल साहब बोले, ''अरे मैम, वह लड़की ही ख़राब थी, बहुत आंख-नाक चलते थे।'' ख़ैर, जेण्डर कमेटी की एक फ़ौरी बैठक बुलाई गई और यह कहा गया, (अब मैनेजर कहे तो आदेश भी समझा जा सकता है) कि घरवालों को समझा-बुझाकर बच्ची को वापस स्कूल बुलाया जाए। सदस्यों ने धीमे से यह कहने की कोशिश की कि यह ज़िम्मेदारी वह नहीं उठा पाएंगे। फिर भी, घरवालों से मिलकर कोशिश तो हुई लेकिन वह बच्ची को भेजने के लिए तैयार नहीं हुए। इस बात के लिए उन्हें ज़रूर राज़ी कर लिया गया कि बच्ची को दसवीं का इम्तिहान दे लेने दें। किसी तरह बच्ची ने दसवीं क्लास का सर्टिफ़िकेट तो हासिल कर लिया अब आगे अल्लाह ही मालिक है।

एक और वाक़िया जो मेरे सामने आया, वह बारहवीं साईंस की एक बच्ची का था जिससे बारहवीं कॉमर्स का एक बच्चा दोस्ती करने की पुरज़ोर कोशिश में था। बच्ची दोस्ती के लिए राज़ी नहीं थी। मैंने पिछली एक क़िस्त में लिखा था कि किस तरह इस वजह से दोनों कक्षाओं के बीच लड़ाई हुई और बच्चों ने फ़ोन करके पुलिस को भी बुलवाया। हुआ यह था कि साहबज़ादे मय दोस्तों के लड़की की कक्षा के बाहर खड़े रहते थे। दोस्तों को अपने ''आशिक'' साथी से हमदर्दी थी। साथी दोस्त की हिम्मत अफ़ज़ाई के तौर पर साथ-साथ रहते थे। मियां ने एक साथी को लड़की के घर भी पैगाम के साथ भेजा और फ़ोन नम्बर मांगा। लड़की की कक्षा के लड़के अबला के बचाव में खड़े हुए तो दोनों समूहों में घमासान लड़ाई हुई। साइंस सेक्शन वालों ने पुलिस भी बुला ली। लड़की ने जेण्डर कमेटी को चिट्ठी लिखी कि किस तरह यह लड़का उसे परेशान कर रहा है। साथ ही उसी की कक्षा के एक लड़के ने भी अर्ज़ी दी कि किस तरह लड़की की मदद करने पर उसे परेशान किया जा रहा है। इस अर्ज़ी में यह सफ़ाई भी पेश की गई कि उसका लड़की से कोई रिश्ता नहीं है लेकिन उसे छेड़ा और तंग किया जाता है। कमेटी की ज़बान में कहें तो इस ''केस'' को भी उन्होंने अपने ख़ास अंदाज़ से ही निपटाया। बच्ची के घरवालों को बुलवाया और तफ़सील बयान की। मुझे, क्योंकि दोनों कक्षाओं के बच्चों के बीच की लड़ाई का पता चला था और यह भी इल्म था कि स्कूल में पुलिस आई इसलिए जब मैं स्कूल गई तो इन बच्चों को एक-एक करके बातचीत के लिए बुलाया। बच्ची बेचारी सहमी हुई मेरे पास आई और उसने तफ़सील बयान की। उस वक़्त हमारे प्रिंसिपल साहब अपने और कामों में मसरूफ़ थे लेकिन कान बातचीत पर ही लगे थे। मैं बच्ची को इत्मिनान दिलवा ही रही थी कि आइन्दा सब ठीक रहेगा कि वह बीच में बोल पड़े, ''इनसे यह भी तो पूछिए मैडम, कि यह सब इन्हीं के साथ क्यों होता है और भी तो लड़कियां हैं इस स्कूल में।'' यह सुनकर मैं हैरान रह गई, बच्ची की आंखों में आंसू छलक आए। मैंने कहा, ''प्रिंसिपल साहब इसमें बच्ची का क्या कुसूर है, अगर किसी का कुसूर ठहराना ही है तो बच्चे का भी तो हो सकता है, आप यह बात इस बच्ची से क्यों कह रहे हैं।'' यह सुनकर कुछ झेंप से गए, बोले, ''मेरा मतलब यह नहीं था।'' बच्ची को समझाने वाले अन्दाज़ में कहा, ''मैं तो यह कह रहा था कि हमारे पिछले बैच में एक लड़की थी जो लड़कों से बात-वात सब करती थी लेकिन किसी ने उससे ज़रा भी छेड़छाड़ या बदतमीज़ी की तो हाथ तक मार देती थी, इसलिए उसके मुंह लगने की किसी की हिम्मत ही नहीं होती थी, ऐसा होना चाहिए।'' बच्ची तड़पकर बोली, ''मैम, इसमें हमारी क्या ग़लती है, स्कूल वालों ने हमारे घर वालों को भी बता दिया। भाई कहते हैं कि अगर कुछ और सुना तो पढ़ाई छुड़वा देंगे।'' ख़ैर, बच्चे को बुलाकर समझाया-बुझाया, लगातार कई बार बातचीत करने पर मामला कुछ सुलझा।

बच्चियों की यह फ़िक्र और मामले सुलझाने की तेज़ी जो हमारी जेण्डर कमेटी ने दिखाई उसने अच्छा ख़ासा नाक में दम कर दिया। बल्कि पता यह भी चला कि इस फ़िक्र में साथ देने वाले और साथी भी हैं। हमारी एक मोहतरमा टीचर ने एक बच्ची के साथ रास्ते में कई दिन लगातार एक लड़के को जाते देख लिया। फ़िक्र-ओ-गौर की इन्तिहा देखिए, यह लड़का जबकि हमारे स्कूल का भी नहीं था, टीचर ने लड़की के मां-बाप को बुला भेजा और उसकी ''करतूतें'' बयान कीं। एक टीचर जो यह नज़ारा देख रही थीं, उनके हिसाब से, ''बच्ची पत्ते की तरह कांप रही थी, मुझे तो लगा कहीं उसे कुछ हो न जाए।'' इस मामले में भी वालदैन के खौफ़ का सिलसिला और बच्ची को घर बिठाने के फ़ैसले से जूझने का मरहला जारी रहा।

सामाजिक दायरे और नज़रिए

अचानक एक के बाद एक ऐसे सिलसिले जब मेरी नज़र से गुज़रे तो यह सवाल लाज़मी था कि क्या जेण्डर कमेटी का वुजूद में आना ग़ज़ब हो गया? या फिर यह सिलसिले और मुद्दे जो पहले आंखों से ओझल थे अब बस नुमाया हो गए? क्या एक समूह या समिति जब औपचारिक ढांचे की शक्ल लेती है तो इसकी ताक़त दोगुनी हो जाती है? ख़ैर, जेण्डर कमेटी को बुलाकर बातचीत हुई। इस बात पर ज़ोर दिया गया कि मौहल्ले और वालदैन का सांस्कृतिक संदर्भ देखते हुए यह कहां तक दुरूस्त है कि वालदैन को बुलाकर बच्चियों को शर्मिंदा किया जाए। यह सवाल भी उठाया, स्कूल में लड़कियों की घटती तादाद के पीछे, क्या मां-बाप का बच्चियों की ''इज़्जत'' से जुड़ा खौफ़ भी हो सकता है। मीटिंग में और वैसे भी कमेटी के सदस्यों से बात होती रही है। मां-बाप से बात करने का अन्दाज़ अब शायद कुछ बदला तो है। ज़्यादा सतर्क होकर और बच्ची को ''मुजरिम'' साबित किए बग़ैर बात होती है। फिर भी कमेटी यह तो साफ़-तौर पर कहती-समझती है कि मां-बाप को बताना-शामिल करना ज़रूरी है ताकि अगर ''कुछ'' हो जाए तो हमारी ज़िम्मेदारी न ठहराई जाए।

कमेटी के सदस्यों के साथ जो बातचीत रही, उसमें कई बातें छुपी हुई हैं। एक बात जो साफ़ तौर पर कही जा सकती है वह है, बच्चियों से जुड़ा ''पाकीज़गी'' का तसव्वुर और उसे बरक़रार रखने की ज़िम्मेदारी बच्चियों की ही ठहराना है। यह कहना कि ''आंख नाक चलती है'', एक तरह से यौनिक आकर्षण का ज़िम्मेदार बच्चियों को ही ठहराना हुआ। दूसरी तरफ़ यह भी कुबूल लिया जाता है कि, ''लड़कों का क्या करें वह तो ऐसे होते ही हैं''। इस सूरत में लड़कों की पहल, छेड़-छाड़, ताने कसना, मना करने पर आक्रामकता इन सभी को कुदरती मान लिया गया है। यहां तक की जेण्डर कमेटी की ही एक टीचर यौनिक आकर्षण की सूरत में लड़कों की ''हरकतों'' को ''मासूमियत'' तक क़रार दे देती हैं। उनके हिसाब से, ''एक बच्चे ने एक लड़की से आई लव यू (I love you) कह दिया। कई बार ऐसे मामले को बढ़ा-चढ़ा दिया जाता है। जब मैंने बच्चे से पूछा तो उसने बताया कि उसने एक सीरियल में देखा था, बस यूं ही बोल दिया। उसे पता तक नहीं था कि इसका मतलब क्या होता है।'' आप अगर जुमले पर गौर करें तो पाएंगे कि इन्होंने ''बच्चा'' और ''लड़की'' शब्द का इस्तेमाल दो हमजमात बच्चों के लिए किया है। इनका और कई और साथियों का मानना है कि लड़कियां लड़कों के मुक़ाबले में जल्दी ''बड़ी'' और समझदार हो जाती हैं। यह भी कहा-समझा जाता है कि, ''आजकल तो लड़कियां ही बहुत तेज़ हो गई हैं, बदनामी से भी नहीं डरती हैं।''

मासूमियत और आक्रामकता की जोड़ी निगली नहीं जाती, लेकिन जब ''स्वाभाविक'' सी जुगलबंदी है तो कुबूल करनी पड़ेगी! मतलब यह है कि लड़कियों को ही कोशिश करनी होती है कि ''ग़लत'' नज़रें उनकी तरफ़ न मुड़ें। चाहे इसके लिए उन्हें थप्पड़ रसीद करना पड़े या फिर हिजाब में रहना पड़े।

एक टीचर जो समिति की सदस्या हैं, उनके हिसाब से, ''कोई बड़ा इश्यू (issue) तो हमारे यहां नहीं हुआ। बस लड़कियां आजकल ज़्यादा तेज़ हो गई हैं, उन पर मीडिया का असर ज़्यादा है... कई बार पैरेन्ट्स, साथ में एक लड़कियों का स्कूल है, हमारे यहां न भेजकर वहां (दाख़िला) करा देते हैं। बल्कि वहां यह भागा-भागी ज़्यादा है, हर रोज़ एक लड़की भागती है।'' लगता है न कि जैसे लड़की अकेली ही इस ''गुनाह'' में शामिल हो। और मीडिया का असर बस ''नामुराद'' लड़कियों पर ही हुआ हो!

यह ज़िक्र यहां ज़रूरी है कि हमारी जेण्डर कमेटी और अध्यापकों की नज़र और फ़िक्र बच्चियों की हाशिएबंदी, जिसमें स्कूल का सक्रिय पाठ्यक्रम और बन्दोबस्त शामिल है, पर मेहरबान नहीं होती। जैसे, बच्चियों को खेलों के लिए प्रोत्साहित नहीं किया जाता है। खेल के पीरियड में या फिर आधी छुट्टी के वक़्त बच्चियां कक्षा में बैठी बातें करती नज़र आती हैं। हमारी स्पोर्ट्स की टीचर जो कमेटी की मेम्बर भी हैं, उनका कहना है कि, ''लड़कियों को बाहर मुक़ाबलों में नहीं ले जाते क्योंकि उनकी सेफ्टी का ध्यान रखना होता है, अगर ले जाओ तो वापस पहुंचाने आना पड़ता है, इसलिए मैं तो उन्हें रहने ही देती हूं।'' बल्कि, वे बच्चियों को ''लक्ष्मण रेखा'' में रहने के फ़ायदे और गुण भी बताती हैं। मज़हब का इस्तेमाल तो समझाने-बुझाने, ''सही राह'' दिखाने में ख़ूब किया जाता है। जैसा कि मैं पिछली क़िस्त में ज़िक्र कर ही चुकी हूं, कि हमारे स्कूल में स्कार्फ़ को लड़कियों के लिए यूनिफ़ॉर्म का हिस्सा बनाने पर बहस चली जो किसी नतीजे पर नहीं पहुंची। इसके बावजूद हमारे एक उस्ताद साहब ने बच्चियों को दीन के हवाले से समझाया कि वह स्कार्फ़ पहनें। बच्चियों के यह कहने पर कि स्कार्फ़ में गर्मी लगती है, समझाया कि यहां की गर्मी बर्दाश्त करना उन्हें जहन्नुम की गर्मी से बचाएगा। फिर भी नहीं मानीं तो बच्चियों के मुताबिक़ उनसे कहा कि ''इतनी ही गर्मी लगती है तो कपड़े भी उतार दो।'' कक्षा के लड़कों ने जब टीचर को सख़्ती करते देखा तो मौक़े का ख़ूब फ़ायदा उठाया और बच्चियों को तंग करके मज़ा लूटा। अगर बच्चियां किसी और टीचर के पीरियड में स्कार्फ़ उतार भी देती थीं तो फ़ौरन इनकी शिकायत उन्हीं टीचर से कर देते थे। बच्चियों का कहना है कि इस बात पर उनकी पिटाई भी हुई। यह सब होने पर बच्चियों ने जेण्डर कमेटी के नाम शिकायती ख़त लिखा जिसका ज़िक्र आगे है। ख़ैर, मैं जानती थी कि हमारे उस्ताद साहब के इरादे और नीयत नेक है। बहुत ज़्यादा ही सुलझे आदमी है, ज़िन्दगी मे बस काले-सफ़ेद रंग ही देख पाते हैं। उनसे बात होने पर रहा-सहा शक भी दूर हो गया। चाहते थे कि आज के दौर को देखते हुए बच्चियों में नेक आदतें, मूल्य, इस्लाम के ज़रिए ही डाली जाएं। कहा भी, ''मैम, मैं जो कुछ अपनी बेटी के लिए सोचता हूं वही मैंने इन बच्चियों के लिए भी सोचा, अगर उन्हें इतना बुरा लगा तो अब नहीं करूंगा।'' बाद में बच्चियां से बस इतना कहा, ''मैंने तो तुम्हें अल्लाह का रास्ता दिखाया, मुझे तो सवाब (पुण्य) ही मिलेगा, तुम्हें जो अच्छा लगे वह करो।'' भई, मज़हब का इस्तेमाल क़तार बनाए रखने के लिए तो किया ही जाता है। दूसरे यह कि लड़कियों को ही लड़कों के स्वाभाविक आक्रामकता से बचने के सुराग बताने-पहनाने होंगे।

सामना और मुकाबला

जहां घर-बिरादरी तक बात पहुंचने का बच्चियों में डर-ख़ौफ़ नज़र आता है, वहीं इनमें लड़कों/मर्दों के इस समाज का मुक़ाबला करने की हिम्मत भी नज़र आती है। कम से कम उनकी ज़्यादती, हद से आगे बढ़ते क़दमों को चुपचाप बर्दाश्त नहीं करती हैं। अब देखिए, सातवीं जमात की बच्चियों ने जेण्डर कमेटी को अपने उस्ताद और क्लास के लड़कों के बारे में, शिकायती ख़त लिखा। ख़त जो उन्होंने उर्दू ज़बान में लिखा था, मैं देवनागरी लिपि में यहां पेश कर रही हूं:

''गुज़ारिश यह है कि मैं सातवीं की तल्बा (छात्रा) हूं। आपसे कुछ कहना चाहती हूं। हमारी क्लास के लड़के हमें परेशान करते हैं। फ़ैजान और इसके अलावा क्लास के दूसरे लड़के, लड़कियों को मारते हैं। और सलाम साहब से हमारी शिकायत करते हैं कि हम स्कार्फ़ नहीं ओढ़तीं। तब सलाम सर भी हमें मारते हैं। लड़कों ने सब लड़कियों के अलग-अलग नाम रखे हैं। जैसे Samisha को दांत की दुकान और मोटी कहते हैं, Nusrat को धूप, Alisha को ढायन टैंक और नबिया को माचिस की तीली और Nosheen को जलेबी बाई कहते हैं।

आपसे हमारी गुज़ारिश है कि आप इन लड़कों को और सलाम सर से बात करके उन्हें मना करें कि ये हमें हाथ न लगाएं। आप की ऐन नवाज़िश होगी'' (अंग्रेज़ी में लिखे गए नामों को यहां वैसे ही लिखा गया है, इस ख़त पर छः बच्चियों के दस्तख़त थे)।

इसी तरह कई ख़त जेण्डर कमेटी के नाम अलग-अलग कक्षाओं की लड़कियों ने लड़कों के परेशान करने के सिलसिले में लिखे हैं। नीचे दसवीं जमात की एक बच्ची का ख़त पेश है:

''गुज़ारिश यह है कि मैं क्लास दसवीं बी में पढ़ती हूं। मुझे रोज़ाना जुनैद-II परेशान करता है। तरह-तरह की आवाज़ें निकालता है। मुझे कागज़ का गोला बनाकर मारता है। क्लास में मेरा बैठना-पढ़ना दुश्वार कर दिया है। वह मुझे ही नहीं, बल्कि पूरी क्लास की लड़कियों को परेशान करता है। बराए मेहरबानी, मेरी दरख़ास्त पर ग़ौर करें और ऐसे शरारती लड़कों को सज़ा दें, आपकी बड़ी मेहरबानी होगी।''

इसी तरह और ख़त भी हैं, जिनमें कई तरह की शिकायतें हैं। जैसे : ''एक लड़के ने मेरा हाथ छू लिया'' या फिर ''फ़ोन नम्बर मांगा और घर तक पीछा किया''।

अगर हम इन शिकायतों पर ग़ौर करेंगे तो दो सवाल उठाए जा सकते हैं। एक, क्या इस तरह की कमेटी का वजूद में आना ''आम'' और ''बेज़रर'' सी चीज़ों और हरकतों को नुमाया, अजूबा और अनोखा बना देता है। हमारी एक बुज़ुर्ग टीचर के हिसाब से पहले हम इन चीज़ों को इश्यू (Issue) नहीं बनने देते थे, बस वहीं के वहीं बातचीत करके, डांट-फटकार ख़त्म कर देते थे।'' जहां मैं मानती हूं कि जेण्डर ग़ैरबराबरी की जड़ें गहरी हैं। साथ ही मर्दानगी और औरतपन से जुड़ा तसव्वुर और तस्वीरें इसे भयानक रूप दे सकती हैं। यह भी सच है कि ग़ैरबराबरी से जुड़ी ख़ामोश हिंसा हमें नज़र भी नहीं आती है क्योंकि वह रिवायत और रिवाज का हिस्सा होती है। फिर भी मेरी गुज़ारिश है कि बच्चों के जो ख़त और दरख़ास्त ऊपर दर्ज हैं उन्हें हमारी बुज़ुर्ग टीचर, जिनका मानना है कि मुद्दे यूंही खड़े कर दिए जाते हैं, उनकी नज़र से देखें और इन सवालों से मेरे साथ जूझें। क्या जब हम किसी कमेटी को औपचारिक जामा पहनाते हैं तब अफ़सरशाही निज़ाम के तहत यह गुंजाइश रहती है कि हम लोगों और मुद्दों की समूहबंदी कुछ इस तरह से करें कि हम कुछ को सफ़ेद और कुछ को काला रंग दे दें। यह इसलिए भी मुमकिन है क्योंकि हम सुबूतों की गहराई खंगाले बग़ैर उन्हें सिर्फ़ ''सुबूत'' के तौर पर क़ुबूल कर लेते हैं। मुद्दों की सामाजिक, सांस्कृतिक जड़ें न देख पाते हैं और न उन तक पहुंचने की कोशिश करते हैं। बच्चियों के ख़तों में जिन ''हरकतों'' का ज़िक्र है, जैसे हाथ छू लेना, नाम देना, छेड़ना, उसे एक नवयुवक के लिए उसकी उम्र का तक़ाजा भी कहा जा सकता है। हां, यह ज़रूर है कि उनके सामाजीकरण ने यह हिम्मत लड़कों को तो दी है, लड़कियों से छीन ली है। इस उम्र तक आते-आते जबकि बच्चों के मर्दानगी और औरतपन के तसव्वुर भी कुछ पुख़्ता से हो जाते हैं। इसके बावजूद काले सफ़ेद की बजाय मुझे सलेटी रंग ज़्यादा नुमाया लगता है जिसमें से उम्मीद की किरण फूटती हुई महसूस होती है। अभी वक़्त है कि इन बच्चों के जेण्डर से जुड़े तसव्वुर को झिन्झोड़ा जाए। इन्हें मुजरिम क़रार देकर बस ऐलान-ए-सज़ा की बजाय, इस ''छेड़छाड़'' के पीछे छुपी सोच को बेनक़ाब करने में इनकी मदद की जाए। काले-सफ़ेद में बांटना और सज़ा सुना देना, इस सोच को ज़्यों का त्यों बरक़रार रखता है। हमारी कमेटी ज़्यादा बड़े-छोटे ''जुर्म'' में फर्क़ तो करती है और उसी हिसाब से सज़ा मुकर्रर करती है। जैसे छेड़-छाड़ की शिकायतों पर बस डांट दिया, ज़्यादा आगे बढ़ जाने पर कुछ वक़्त के लिए स्कूल से बेदख़ल कर दिया लेकिन असली मुजरिम का चेहरा बच्चों से छुपा ही रहा। वह मुजरिम है सांस्कृतिक ढांचों से जुड़ी सोच और हिंसा। संवाद के ज़रिए लड़कों की ''बेतकल्लुफ़ी'' और लड़कियों की ''हया'' की सामाजिक अपेक्षा के बारे में बच्चों की समझ बनाई जा सकती है।

यह भी सच है कि अगर बड़ी कक्षाओं के बच्चों को देखें तो उनमें से कई बच्चे, जवानी की डगर पर है। उनसे इस बातचीत की जरूरत है कि बिना इजाज़त आगे बढ़ना, ताने कसना इस तरह की बात कहना जो लड़कियों को नागवार गुज़रे, हिंसा की निशानियां हैं। यह कब भयानक रूप ले लें इससे बचने की ज़रूरत है। एक-दूसरे के दायरों और जगह की इज़्ज़त समझनी-समझानी होगी।

दूसरी बात जो मैं कहना चाहूंगी वह यह है कि बच्चियों के इन खतूत से यह ज़ाहिर होता है कि ''पवित्रता'' या ''पाकीज़ा दामन'' होने के सामाजिक ख़ौफ़ ने उन्हें नहीं दबोच रखा है। छोटी-छोटी हरकतों की सूचना देना और साथ ही सज़ा की दुहाई यह बताता है कि वह लड़कों की हरकतों के लिए न अपने-आपको ज़िम्मेदार मानती हैं न क़ुसूरवार और न ही इन्हें उस बात का आम होना अपने पाक दामन पर बदनुमा दाग़ महसूस होता है। कुछ अगर जिम्मेदार मानती भी हैं तो भी क़ुसूवार लड़कों को ही ठहराती हैं, चाहे ज़माना उन्हें यह बताने-जताने की जितनी भी कोशिश क्यों न करे। मज़हब के, रिवायत, दस्तूर के हिसाब से कोशिशें जारी हैं तो हुआ करें। बच्चियों का यह

व्यवहार एक बदलते हुए समाज की ओर तो इशारा करता ही है। दूसरी तरफ ऐसी बच्चियां भी हैं जिन्होंने यह ख्याल ओढ़ लिया है कि लड़के अगर गलत हरकतें करें तो जिम्मेदारी उन्हीं की है- ऐसा हम आगे देखेंगे।

मुझे लगता है कि जेण्डर कमेटी के वजूद में आने से ज़्यादा उनके अपने हालात उन्हें मर्दों की दुनिया का सामना करने की हिम्मत देते हैं। यह बात मैं कुछ ऐतमाद के साथ इसलिए कह सकती हूं क्योंकि मैं काफ़ी बच्चों की वाल्दा से मिली हूं। इनमें से बहुत-सी ऐसी हैं, जो इन बच्चियों और बच्चों की कुछ मदद किसी न किसी रूप में लेती तो हैं, लेकिन आर्थिक ऐतबार से खुदमुख़्तार हैं। घर ही पर बैठकर सही, पैकिंग का काम, क्लिप बनाना, सितारे टांकने का काम करती हैं। साथ ही कम खर्चे में जोड़-तोड़, मोल-भाव करके घर चलाने और शौहर और बच्चों को सहारा देने का अहम रोल भी अदा करती हैं। रिश्तेदारियां निभाने और मज़दूर परिवारों के बीच के आर्थिक रिश्ते बरक़रार रखने का काम भी इन्हीं का है। रिश्तों से जुड़े रस्मो-रिवाज जैसे-शादी, पैदाइश, मौत में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेने और मुश्किल हालात के दौर में उधार, जमा पैसे से चूल्हा जलता रहे, यह फ़न भी इन्हीं को आता है। ऐसे में शौहर से न सही, बेटों से तो इज़्जत इन्हें मिल पाती है। यह सब इन्हें सत्ता का एहसास करवाता है और दुनिया से जूझने की हिम्मत भी देता है। शायद यही हिम्मत हमारी बच्चियों तक पहुंच जाती है। इन महिलाओं को हमारे स्कूल की एक तजुरबेकार टीचर ने ''अच्छा'' ख़िताब दिया है। कहती हैं, ''भई, यहां की औरतें तो मरद-मारनी हैं, यह इन्हीं की बेटियां हैं।'' यह बात उन्होंने इस सवाल के जवाब में कही कि हमारी बच्चियों में हिम्मत आख़िर कहां से आती है। आर्थिक तौर पर खुदमुख़्तार औरतें जो घर के फ़ैसलों में जगह बनाने की जद्दोजहद में अगर घर के मर्दों से बात-तकरार करें तो उन्हें ''मरद-मारनी'' कह देना पितृसत्ता का परचम ही लहराना हुआ। जहां इस बात की दलील दी जा सकती है कि हमारी बच्चियों में हिम्मत खूब है, वहीं इस बात को भी नज़रअन्दाज़ नहीं किया जा सकता कि कई बार इन्हें ''हिम्मत दिला'' भी दी जाती है। हमारे मज़हबी टीचर जहां इस कोशिश में थे कि बच्चियां नेक बनें, स्कार्फ़ ओढ़ें, वहीं हमारी एक महिला टीचर उनकी इस कोशिश से काफ़ी नाराज़ थीं। उन्होंने इस मुद्दे को अपनी नाक से जोड़ लिया और समझीं कि जैसे उनकी ज़िद में ऐसा किया जा रहा है। मैंने बातों-बातों में सातवीं कक्षा की बच्चियों से पूछा 'अच्छा' यह तो बताओ इतनी हिम्मत आई कहां से कि सर की शिकायत लिख डाली?''। पहले तो कुछ टाल-मटोल-सी की फिर मासूमियत से कहा, ''वह समीना मैम ने कहा था कि तुम लिखो तो सही, हम तुम्हारे साथ हैं, इसलिए भी ख़त लिखा।'' इस राजनीति को समझना और साथ ही इरादों को भांपना और फ़ैसला लेना इंतज़ामिया की जिम्मेदारी बनती है। यहां यह कहना जरूरी है कि मुश्किल दौर से गुज़र रही एकल महिलाएं या हाल में दिल्ली आए परिवारों में इस तरह की हिम्मत देखने को नहीं मिलती।

एक और तरह की यौनिक हिंसा का जिक्र यहां करना चाहूंगी। एक दिन स्कूल में दो लड़के लहुलुहान दफ़्तर में लाए गए। टीचर उनकी मरहम पट्टी कर रही थी। एक का गला छिला हुआ था, दूसरे के हाथ से खून बह रहा था। पता यह चला कि लड़के आपस में भी यौनिक हिंसा कर जाते हैं। एक लड़का दूसरे की पतलून में ज़बरदस्ती फुट्टा घुसा रहा था। इसमें उसके एक-दो और साथी भी शामिल थे। इस ज़बरदस्ती की हरकत पर लड़ाई हुई तो यह हालत हो गई। इस तरह की हरकतें पहले भी सुनने में आई हैं। यह हाल का वाक़या है, अभी इस बात पर कुछ ख़ास ग़ौर नहीं कर पाए हैं कि ऐसे सिलसिले में क्या किया जाए। यह पूछने पर कि क्या कमेटी कुछ क़दम उठाती है, बस यह कहा गया, ''समझाते हैं और क्या करेंगे। पेरेन्ट्स को बुलाकर बात भी करते हैं।'' जब पूछा कि वालदैन क्या कहते हैं तो बताया, ''मैम, इसकी (लड़के की) दो बार, इसके फ़ादर से शिकायत की है। वह तो बस इसे चिल्ले-विल्ले पर जमात के साथ भेज देते हैं।'' स्कूल भी तो बस इसी तरह के उपदेश ही देता है। हमारे स्कूल की एक टीचर के हिसाब से, ''इस तरह की और भी ग़लत हरकतें उन क्लासों में कम हैं जहां लड़कियों की तादाद कुछ ज़्यादा है। लड़के-लड़कियां जब दोनों होते हैं तो माहौल बेहतर होता है, बच्चे संभले रहते हैं।''

जेण्डर कमेटी के काम की आलोचना का मतलब उसकी ऐहमियत को कम करना नहीं है। बल्कि उसके काम को क़रीब से देखना-समझना है ताकि बदलाव की सूरत निकाली जा सके। समाज में यौनिक हिंसा का आम होना यह बताता है कि हमें ऐसे हादसों से सतर्क रहने की ज़रूरत है और इसमें जेण्डर कमेटी के होना मदद तो करता ही है।

लेकिन ज़रूरत इस बात की है कि कमेटी के सदस्य जेण्डर और यौनिकता के मुद्दों को ग़हराई से समझें। संवाद के ज़रिए बच्चों के ख़्यालात को जानें, झिंझोड़ें और बदलने में सहारा दें। लड़कों और लड़कियों की हिम्मत में, आक्रामकता भरे अंदाज़ में, अश्लील व्यवहार में कब और कैसे फ़र्क़ आ जाता है, इसकी जांच ज़रूरी है। मैंने पिछली एक क़िस्त में लिखा था कि किस तरह लड़के कम उम्र टीचर को अपने मज़ाक़ और अश्लील हरकतों का निशाना बनाते हैं। आजकल हमारे स्कूल में बी.एड. की छात्राएं जो पढ़ाने आई हुई हैं, वे निशाने पर हैं। लड़के पास से कान में चीख़ते, अश्लील अल्फ़ाज़ बोलते, गाने गाते गुज़र जाते हैं। गाने भी कैसे- ''बारह महीने में बारह तरीक़े से तुझको प्यार जताऊंगा मैं, बारह मिनट भी लगता है कि अब तेरे बिन न जी पाऊंगा रे...'' बॉलीवुड को कोसें या इन बच्चों को, कहना मुश्किल है। कई बार पीछे से पुकार लगती है, ''अरे! चाय तो पीती जाइए।'' एक लड़की जो पढ़ाने आई है, वह ज़रा कम क़द की है, तो मज़ाक़ होता है, ''अरे यह किसकी बच्ची यहां छूट गई।'' यानी इन लड़कियों का अच्छा ख़ासा नाक में दम कर रखा है। यह हरकतें कब लड़का होने का हिस्सा बन जाती हैं और क्यों कुबूल भी कर ली जाती हैं, बच्चों के साथ मिलकर इसको समझना-जानना ज़रूरी है।

ज़रूरत को देखते हुए टीचर के साथ जेण्डर पर कई कार्यशालाएं आयोजित करवाई गई हैं। लेकिन अभी यह नाकाफ़ी है। आने वाले वर्ष में मार्च के महीने में इस मुद्दे पर लगातार काम करने की एक योजना तो बनाई है। देखिए, कितनी कामयाब रहती है। इसकी कामयाबी शायद हमें समुदाय को साथ लेकर चलने और बदलने की हिम्मत बख़्शेगी। तब हम शायद इन मामलों और ''केस'' के बारे में वालदैन से एक नई रोशनी में बात कर पाएंगे जहां संवाद के ज़रिए मर्दानगी और औरतपन से जुड़े सामाजिक-सांस्कृतिक तसव्वुर को समझा-झंझोड़ा जाएगा। यह पुख़्ता दीवार जैसी आकृतियों को बदलने जैसा मुश्किल काम हो सकता है लेकिन नामुमकिन नहीं। समाज को बदलने का ख़्वाब जो शिक्षा का अधिकार कानून (2009), स्कूल इंतेज़मिया कमेटी द्वारा पूरा करना चाहता है इसी तरह साकार हो सकता है। वरना, क्या स्कूल इंतज़मिया कमेटी (SMC) भी खाप पंचायत का रूप ले सकती है? आपकी इस बारे में क्या राय है?

इस क़िस्त के आख़ीर में हाल में हुई बारहवीं कक्षा की बच्चियों से मेरी बातचीत के कुछ अंश पेश है। तक़रीबन एक घंटे की यह बातचीत स्कूल के माहौल, बच्चों की मानसिकता और समाज के बारे में बहुत कुछ बताती है। हाल में, दिल्ली और कई शहरों में हुई यौनिक शोषण की वारदातों ने मुझे काफ़ी हिला-सा दिया है। यह ख़याल भी आया कि हमारी बच्चियां अपने-आपको स्कूल में कितना महफ़ूज़ समझती हैं। सोचा, बड़ी जमात की बच्चियों से बात की जाए। इन आठ बच्चियों में अमरीन भी शामिल है जो स्कूल की हैड गर्ल (Head Girl) है।

मैं - 16 दिसम्बर, 2012 को जो वारदात हुई दिल्ली में और हाल में जो गोवा में हुआ, उसके बारे में सुना है?

शारफ़ा - ''दामिनी वाली'' (निर्भया को दिया गया दूसरा नाम)

निदा - जी मैम, पता है।

मैं - ख़ैर, वह तो बहुत तक्लीफ़देह वाक़िये थे, यह बताओ स्कूल में कैसा महसूस करती हो, तुम्हारे बारे में सिर्फ़ नहीं पूछ रही हूं, क्या बच्चियां अपने-आपको यहां महफ़ूज़ समझती हैं?

रूबी - मैम, हमारे स्कूल में तो ऐसा कुछ भी नहीं है।

अमरीन - असल में मैम लड़की पर होता है, अगर वह ठीक है तो सब ठीक रहते हैं।

मैं - क्यों, लड़की ठीक भी है तो भी लड़के बदतमीज़ी कर सकते हैं और बड़े भी कर सकते हैं।

रूबी - नहीं मैम, हमारे यहां ऐसा नहीं है। अगर लड़के तंग भी करते हैं तो हम आठ हैं, मिलकर रहते हैं, इसलिए ज़्यादा कुछ कर नहीं पाते।

रूही - इन्हें तंग करते हैं (शारफ़ा की तरफ़ इशारा करते हुए) क्योंकि यह हंसती रहती है।

अमरीन - मैम, अगर लड़की खुद चाहती है तब ही कुछ होता है। कई बार लड़कियां चाहती हैं कि उन्हें छेड़ा जाए।

मैं - मतलब हमारी शारफ़ा चाहती है कि उसके साथ शरारत हो?

शारफ़ा - (मुंह पर हाथ रखकर) नहीं मैम, अगर कुछ कहो तो लड़के और ज़्यादा चिढ़ाते हैं। नई-नई चिढ़ निकालते हैं।

मैं - क्या करते हैं?

शारफ़ा - कभी बैग छुपा दिया।

निदा - मैम, ऐसी ज़्यादा भी ग़लत हरकतें नहीं करते। कई बार तो बस यूं ही मज़ाक करते हैं।

मैं - जैसे?

अमरीन - कभी कोई नया बैग लेकर आया तो कहेंगे अरे नया बैग, एक कहेगा साथ-साथ सब तज़बीह-सी पढ़ने लगेंगे, नया बैग, नया बैग...

शारफ़ा - अगर टीचर के सवाल का जवाब दे दें तो कहेंगे, ''अरे बड़ी इन्टैलीजेन्ट है।'' सब मिलकर ताली बजाने लगेंगे।

मैं - लेकिन सोचने वाली बात यह है कि मज़ाक वह ही क्यों कर पाते हैं लड़कियां क्यों नहीं कर पाती हैं?

रूबी - नहीं मैम, हम भी कर लेते हैं। यह अमरीन तो डांट भी देती है और मज़ाक भी कर लेती है।

मैं - क्या करती है?

अमरीन - ज़्यादा तंग करते हैं तो सीधा धमकी देते हैं - ज़्यादा अपने-आपको समझ रहे हो, अभी प्रिंसिपल साहब को एप्लीकेशन लिखकर दे दूंगी, होश ठिकाने आ जाएंगे।

निदा - और छेड़ भी देते हैं। अमरीन तो ज़्यादा ही छेड़ती है।

मैं - क्या करती हो भई अमरीन?

अमरीन - कुछ नहीं मैम, मैं भी और यह भी अगर कोई नई जैकट पहनकर आया तो छेड़ दिया कि बहुत चमक रहे हो क्या बात है!

मैं - चलो, यह तो एक बात हुई, पिछले साल यह शाहआलम वाला वाक़िया हुआ था (स्कूल में)। ऐसा तो कुछ नहीं हुआ न फिर?

ताएबा - नहीं मैम, वैसे भी शाहआलम ऐसे लगते नहीं थे।

रूबी - हां, हमें तो यह सुनकर काफ़ी हैरानी हुई थी।

ताएबा - वैसे मैम, को-एड (co-ed) स्कूल ही ठीक रहते हैं। सिर्फ़ लड़कों के स्कूल ठीक नहीं होते।

मैं - क्यों, को-एड कैसे ठीक हैं भई?

निदा - सिर्फ़ लड़कों के स्कूल में लड़कों में शर्म नहीं रहती है, बदतमीज़ हो जाते हैं।

मैं - अच्छा, कैसे?

ताएबा - जैसे हमारी क्लास में कभी पीछे बैठकर कोई गलत हरकत करते हैं या गाली देते हैं तो दूसरा मना करता है - लड़कियां हैं यार।

निदा - वैसे सिर्फ़ लड़कियों के स्कूल भी ठीक नहीं होते।

मैं - वह क्यों भई, उनमें क्या ख़राबी है?

लड़की - अब रौशन लाल स्कूल को देखिए। लड़कियां इतना मेक-अप करके आती हैं। छुट्टी के वक्त लड़के बाहर जमा रहते हैं।

मैं - तो इसका मतलब क्या हुआ?

ताएबा - लड़कियां-लड़के एक-दूसरे के साथ रहना नहीं जानते। बस, एक तरह देखते हैं एक-दूसरे को।

मैं - अजीबो-ग़रीब समझते हैं क्यों?

ताएबा - जी मैम, अगर हम उस तरह मेक-अप में आएंगे तब तो आफ़त कर देंगे लड़के हमारी, इतना चिढ़ाएंगे।

निदा - कहेंगे, यह क्या पोत रखा है। इस तरह से लड़कियां भी ठीक रहती हैं।

मैं - तो फिर हमारा को-एड स्कूल ठीक है। लेकिन बाहर के लोग तो और कुछ समझते हैं। वालदैन भी डरते

हैं कि लड़के इतने शरारती हैं, लड़कियों को तंग करेंगे परेशान करेंगे।

अमरीन - नहीं मैम, ऐसा कुछ भी नहीं है।

मैं - तो फिर तुम्हारी दोस्ती है लड़कों से?

रूबी - करनी भी पड़ती है, काम भी तो कर देते हैं वे, मैम कोई प्रोजेक्ट करने के लिए देती हैं तो कम्प्यूटर से कुछ मंगाना होता है।

निदा - कुछ डाउनलोड करवाना होता है या फिर फोटोस्टेट करवाना होता है तो करवा देते हैं।

मैं - तब तो फ्रेण्ड हैं, बॉय फ्रेण्ड हैं क्या?

रूही - फ्रेण्ड ही हैं मैम। यह ही ठीक है, बॉय फ्रेण्ड वाली लड़कियां तो बस बाल ठीक करती रहती हैं और मेक-अप करती रह जाती हैं।

मैं - ऐसा है क्या?

ताएबा - ऐसा ही है मैम।

मैं - अच्छा, फिर क्या गर्लफ्रेंड वाले लड़के भी क्या बहुत तैयार होते हैं, फैशन करते हैं?

निदा - वो तो शायद करते हैं लेकिन इतना नहीं।

मैं - तो इस बारे में तो सोचना चाहिए कि लड़कियां क्यों इतना मैकअप करती हैं लड़कों को ऐसी जरूरत क्यों नहीं पड़ती? इस बारे में फिर बात करेंगे। अच्छा बताओ, तुम्हें जेण्डर कमेटी के बारे में पता है?

अमरीन - वह शमीना मैम और सुमन मैम वाली, हां पता है मैम।

मैं - बाक़ी लोगों को भी पता है या नहीं?...

इससे पहले कि आगे कोई बात करूं, यह कहना ज़रूरी है कि हमारी जेण्डर कमेटी का काम कुछ माइनों में तो क़ाबिले तारीफ़ है। बच्चों-बच्चियों से ये लोग लगातार बात करते हैं, सबको इसकी मौजूदगी का इल्म है और बच्चियों को हिम्मत तो बख़्श ही रही है। कमेटी की एक मेम्बर के हिसाब से, ''मैम, हम लोग कई बार असेम्बली के बाद बच्चियों को रोककर अलग से बात करते हैं और भी ख़्याल रखते हैं''।

बच्चियों से बातचीत पहले दिए गए सवालों को दुबारा उजागर करती है। इन लड़कियों ने अपने टीचर और बड़ों का ख़्याल पता नहीं कब अपना लिया है कि शोषण की सूरत में ज़िम्मेदारी उनकी खुद की है। तभी तो लगता है कि इसी जिम्मेदारी के तहत जेण्डर कमेटी को ख़त भी लिखे हैं कि अगर कुछ आगे बढ़े तो उन्हें ही न घेर लिया जाए। बच्चियों की यह समझ कि लड़के-लड़कियों के एक साथ पढ़ने में फ़ायदा है, वे एक-दूसरे को दुनिया से अलग अजीबों-गरीब शैय की तरह नहीं देखते, उनकी टीचर की समझ से मेल खाती है। उन्होंने यह बात कई तरह से समझाने की कोशिश की जैसे यह कहना कि ''एक-दूसरे को एक तरह से दखते हैं'', साथ में यह बताना कि लड़के बाहर जमा रहते हैं और लड़कियां मेक-अप करती हैं। यह टिप्पणियां यह बताती हैं कि लड़कों के साथ पढ़ने से यौनिकता के अलावा और बहुत से आयामों को लेकर रिश्ते बन सकते हैं और एक-दूसरे को समझ-जान सकते हैं। वैसे हमारी बच्चियां सिर्फ़ यह कह ही नहीं रही हैं। लड़कों की डांट पड़ने पर मज़ाक उड़ाने और छेड़कर मज़े लूटते तो मैंने खुद भी देखा है। एक दिन किसी शरारत़ पर प्रिंसिपल साहब इन्हीं की कक्षा के लड़कों को डांट रहे थे। जब मैं पहुंची तो देखा सबसे आगे बैठी हमारी यह बच्च्यिां इशारे से लड़कों को चिड़ा रही थीं। वाकई ''आंख-नाक चल रहे थे''!

अगली क़िस्त में कई और समितियों का ज़िक्र करूंगी। इनमें शामिल है स्कूल की हाउज़ कमेटी, असेम्बली कमेटी वगैरा। इन समितियों के ज़िक्र के द्वारा ये बताने की कोशिश होगी कि इनके कार्यशील होने से किस तरह स्कूल के माहौल में एक बदलाव आया है। ◆